National Journal of Multidisciplinary Research and Development
www.multidisciplinaryjournal.org
ISSN: 2455-9040
Received: 04-01-2024, Accepted: 20-01-2024, Published: 05-02-2024
Volume 9, Issue 1, 2024, Page No. 21-23

समग्र स्वास्थ्य में गीतोक्त कर्मयोग की उपयोगिता

देवेश कुमार
शोध छात्र, योग विज्ञान विभाग, गुरुकुल काँगड़ी (सम विश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
हम सभी कुछ न कुछ कर्म करते रहते हैं। हम बिना कर्म किए रह नहीं पाते हम प्रत्येक क्षण कर्म करते रहते हैं। जिन कर्मों को करते समय हमारा मन व भावनाएं जुड़ जाती हैं वो संस्कार के रूप मे एकत्र हो जाते हैं जिन्हें महर्षि पतंजलि ने विपाक नाम दिया है। उनका फल हमें भोगना ही पड़ता है। निकृष्ट कर्मों का परिणाम निकृष्ट फल के रूप में सामने आता है और उत्कृष्ट कर्मों का फल उन्नति प्रदान करने वाला होता है। संसार में जितने भी प्राणी हैं सभी कुछ न कुछ कर्म करते रहते हैं। ऐसे ही मनुष्य भी निरंतर कर्म करने में लगा रहता है सुबह जागरण के बाद से रात्रि में शयन तक हम कर्म करते रहते हैं। हम हर समय कोई न कोई कर्म करते रहते हैं कर्म करना हमारी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हम जो भी कर्म करते हैं उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है और जो व्यक्ति कर्म करता है उसे ही उसका फल भोगना होता है किसी दूसरे को नहीं। इसलिए हमें ऐसे कर्म करने चाहिए जिससे हमें दुख न हो, सांसारिक बंधन में न बांधते हों, समग्र स्वास्थ्य प्रदान करने वाले हों। हमें शास्त्रों के अनुरूप ही कर्म करने चाहिए। प्रस्तुत शोध पत्र में बताया गया है कि भगवद्गीतोक्त कर्मों को करने से किस प्रकार समग्र स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है।

मूल शब्दः कर्म, स्वास्थ्य, भावनाएं, दुख, बंधन।

कर्म सिद्धांत का वर्णन भारतीय दार्शनिकों ने बहुत ही गहन और व्यापक रूप से किया है। हम नित्य प्रति जो कार्य करते हैं वो हमारे सामान्य कर्म होते हैं उनके संस्कार नहीं बनते हैं किन्तु जिन कार्यों को करने में हमारी भावनाएं जुड़ जाती हैं वो संस्कार के रूप में एकत्र हो जाते हैं। कर्म शब्द ''कृ'' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है क्रिया करना। संस्कृत के विद्वानों ने कर्म की परिभाषा की है 'यत्क्रियते तत्कर्म' अर्थात् जो किया जाता है उसे कर्म कहते हैं। गीता में कहा गया है कि **'शरीरवाङ्ग्मनोभिर्यत्कर्म'**[1] अर्थात जो शरीर, मन और वाणी की संयुक्त क्रिया है वह कर्म है। कर्म का अभिप्राय है चेतन द्रव्य की सोची समझी क्रिया। जड़ द्रव्य की क्रिया कर्म नहीं कहलाती। पृथ्वी का अपनी धूरी पर घूमना, सूर्य की ग्रहों द्वारा परिक्रमा करना क्रिया तो है किन्तु कर्म नहीं है। पलक का झपकना, दिल का धड़कना आदि नैसर्गिक क्रियाएं कर्म के अन्तर्गत नहीं आती। समाज में कर्मों के फल से संबन्धित विभिन्न धारणाएँ प्रचलित हैं। भारत में विभिन्न धर्म और संप्रदाय के लोग निवास करते हैं और उनकी अलग–अलग धार्मिक मान्यताएँ हैं फिर भी सभी धर्म संप्रदाय के लोग कर्मों के फल अर्थात कर्म सिद्धान्त को मानते हैं। सनातनी हिन्दू ही नहीं अपितु इस्लाम, बौद्ध, जैन, सिक्ख संप्रदाय में भी कर्म सिद्धान्त की मान्यता मिलती है। लौकिक विश्व में जीवन को सुखमय बनाने के लिए मानव द्वारा निरंतर कर्म किए जाते हैं। भारतीय दार्शनिक विचारधारा लौकिक सुख को भी दुख ही मानती है चूंकि वो सुख भी वियोग होने पर दुख ही देता है जिससे व्यक्ति के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। गीता में कर्म की गति को गहन बताते हुए कहा गया है कि **"गहना कर्मणो गतिः"** अर्थात् कर्म की गति बहुत गहन है। मनुष्य के कर्म ही भाग्य का निर्माण करते हैं उन्हीं से तय होता है कि व्यक्ति का जन्म कैसा होगा व कहाँ होगा या वह जन्म–मरण के बंधन से मुक्त हो जाएगा और मोक्ष को प्राप्त करेगा, हमारा समग्र स्वास्थ्य कर्म पर आधारित है हम जैसे कर्म करेंगे वैसा हमारे शरीर व मन पर प्रभाव पड़ेगा और यही प्रभाव हमारे जीवन को रूपांतरित करता है। कर्त्ता चाहे तो कल्याण का कार्य करे अर्थात् परोपकार करे, दीन–दुखियों की सेवा करे या इसके विपरीत अन्याय, अत्याचार, चोरी, बलात्कार करे। परन्तु उसका फल उसके हाथ में नहीं है उसका फल ईश्वर के न्यायिक प्रक्रिया के अनुरूप मिलता है। जैसा कि गीता में कहा हैः– **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन[2]।** अर्थात कर्म करना तो हमारे अधिकार में है परन्तु उसका फल नहीं है। फल हमारे सभी कर्मों का औसत परिणाम होता है चूंकि हम निरंतर कर्मों में लगे रहते हैं इस बीच हमसे अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्म किए जाते हैं किन्तु उस समय हमारा चित्त किस कर्म के प्रति एकाग्र था उसी के अनुसार परमतत्व, परमात्मा हमें फल देता है। भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने बताया है कि :–

नहिं कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्व; प्रकृतिजैर्गुणेः।।[3]

अर्थात कोई भी मनुष्य बिना कर्म किए एक क्षण भी नहीं रह सकता वह प्रकृति जनित गुणों के वश में रहकर निरंतर कर्म करता रहता है। हमारे कर्मों का स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। मनुष्य अपनी इच्छा और आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु कर्म करता है किन्तु वे कर्म भी बंधन में बांधने वाले होते है इसलिए भगवान कृष्ण ने बताया है की हमें शास्त्रों के अनुरूप ही कर्म करने चाहिए। जो शास्त्रों के अनुरूप कर्म नहीं करता वह नीच योनियों को प्राप्त करता है। जिसका वर्णन भगवद्गीता में भगवान श्री कृ ष्ण ने इस प्रकार किया हैः–

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥[4]

हमारे पास शास्त्र ही प्रमाण हैं कि हम क्या कर्म करें और क्या कर्म न करें इसलिए हमें शास्त्रोक्त कर्मों को ही करना चाहिए। शास्त्रों के विरुद्ध कर्म करने पर हम कर्म–संस्कारों में बंध जाते हैं और नीच योनियों में जन्म लेकर उन कर्मों के फल को भोगते हैं। महाभारत में उल्लेख मिलता है कि– **कृतं हि यो अभिजानाति सहस्त्रे सोअस्ति नास्ति च ॥**[5] अर्थात हजारों में से कोई एक व्यक्ति होता है जिसे अपने कर्मों का ज्ञान होता है क्या करना है या क्या नहीं करना। उस पुरुष को हि श्रेष्ठ कहा जाता है जो कर्मों को जानता है वह ज्ञानी पुरुष है। इसलिए यजुर्वेद में कहा है –

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।
एवन्त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।[6]

अर्थात हे मनुष्य आलस्य त्यागकर सत्कर्म करते हुए सौ वर्ष या उससे अधिक जीने की कामना कर। क्योंकि ये कर्म ही मनुष्य के लिए श्रेष्ठ मार्ग है। ऐसा करने वाला मनुष्य कभी कर्म में लिप्त नहीं होता। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इन्हीं कर्मों को महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में वर्णित किया है वे दुख का कारण मनुष्य के कर्मों को ही मानते हैं। कर्मों के निष्पादन से ही क्लेश उत्पन्न होते हैं जिनके रहते मनुष्य का चित्त कभी स्थिर नहीं रहता है। चित्त में कर्म फल संस्कार जिन्हें महर्षि ने कर्माशय विपाक नाम दिया है, का वर्णन करते हुए महर्षि ने स्पष्ट बताया है कि –

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥ [7]

अर्थात जब तक चित्त में क्लेश और कर्म संस्कार उपस्थित हैं तब तक व्यक्ति मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। वह जन्म–मृत्यु के जाल में फँसा रहेगा तथा वर्तमान और भविष्य में उन कर्मों का फल भोगता ही रहेगा जो उसके द्वारा निष्पादित हुए हैं। वह व्यक्ति बार दृ बार जन्म लेगा और कर्मों के फल को भोगता रहेगा। आगे महर्षि पतंजलि कहते हैं कि –

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥[8]

अर्थात जन्मदृमृत्यु का यह चक्र तब तक चलता रहेगा जब तक चित्त में कर्माशयों का मूल उपस्थित है। तब तक प्राणी पुनर्जन्म से लेकर जीवन भर उन संस्कारों को भोगता रहेगा। भिन्न–भिन्न योनियों में जन्म लेकर और जन्म–मृत्यु के बंधन में बंधा रहता है। जिसकी पुष्टि अथर्ववेद के इस मंत्र से होती है –

न किल्विषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति।
अनूनं निहितं पात्रं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनराविशति।।[9]

अर्थात कर्मफल में कभी कोई त्रुटि नहीं होती, ऐसा भी नहीं है कि मित्रों के साथ सङ्गति करता हुआ व्यक्ति इससे बच जाए। कर्मफल रूपी तराजू बिना किसी घटा–बढ़ी के सुरक्षित रखी है। कर्म करने वाले को कर्मफल अवश्य ही मिलता है। उपर्युक्त मन्त्र से स्पष्ट होता है कि ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्मों के अनुसार ही फल मिलता है। यदि धर्म के मार्ग पर चलकर कल्याणार्थ कर्म किया है तो इसका फल पुण्य तथा अधर्मपूर्ण कार्य किया है तो पाप फल प्राप्त होगा। कहा भी है – **अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।** अर्थात प्रत्येक जीव को अपने किये हुए अच्छे एवं बुरे कर्मों के फल को भोगना ही पड़ता है। भगवद्गीता में कहा गया है–

कर्मणा ह्यापि बौद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बौद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः[10]।।

कर्म की गति को गहन प्रदर्शित करते हुए कर्म के तीन स्वरूपों का वर्णन किया गया है, यथा – कर्म, अकर्म और विकर्म ।

कर्म – कोई भी कार्य जो मन, वचन या शरीर से किया जाए वह कर्म कहा जाता है। ये साधारण कर्म हैं जिन्हें हम प्रतिदिन करते हैं। इन कर्मों को नित्य कर्म कहा जाता है। जिसमें हमारी सामान्य दिनचर्या शामिल होती है।

अकर्म – कोई भी कार्य जब अनासक्त भाव से किया जाए, बिना फल की इच्छा के किया जाए जैसे बिना किसी स्वार्थ के किसी की मदद करना, किसी भूखे को खाना खिलाना, शिक्षा देना, सेवा शुश्रूषा करना आदि कर्म 'अकर्म' कहलाता है। भगवान श्री कृष्ण इन्हीं कर्मों को करने का निर्देश देते हैं। इन्हें ही वे निष्काम कर्म कहते हैं, कर्म को ईश्वर के प्रति समर्पित भाव से किया गया कर्म। इस निष्काम कर्म को ही श्रीकृष्ण ने कौशलपूर्ण कर्म कहा है, इसे ही योग कहा है[11]। महर्षि पतंजलि ने इन कर्मों को अशुक्लाकृष्ण कर्म कहा है[12]।

विकर्म

कोई भी कार्य जो माता पिता विरोधी, समाज विरोधी हों अर्थात शास्त्र निषिद्ध हों वे सब विकर्म कहलाते हैं। इन कर्मों को विहित कर्म कहा जाता है ये किसी को दुख पहुँचाने के भाव से किए जाते हैं, स्वार्थ सिद्धि के लिए किए जाने वाले कर्म होते हैं। इन कर्मों को कामना की पूर्ति के लिए किए जाने के कारण काम्य कर्म तथा किसी को निमित्त मानकर किए जाने के कारण नैमित्तिक कर्म कहा जाता है। श्री कृष्ण गीतोपदेश में सकाम कर्म और निष्काम कर्म की चर्चा करते हैं। सकाम कर्म अथवा वह कर्म जो इच्छा पूर्ति या आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए किए जाते हैं। तथा निष्काम कर्म जो बिना किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिए किए जाते हैं। अर्थात हम कह सकते हैं कि सकाम कर्म ही विकर्म कर्म के रूप में संचित होते हैं।

श्रीमदभगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कर्म के तीन अन्य प्रकारों का वर्णन सात्विक, राजसिक तथा तामसिक कर्म के रूप में किया है जिसमें वे बताते हैं कि कौन से कर्म में क्या प्रवृत्ति होती है और वह कैसा फल देने वाला है कर्म की प्रवृत्ती पर निर्भर करता है। जैसे सात्विक कर्मों के विषय में कहा गया है–

नियतं सअंगरहितमरागद्वेषतः कृतम।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्विकमुच्यते ॥[13]

अर्थात जो कर्म शास्त्र विधि से किए जाते हैं, अभिमान, अहंकार से मुक्त हों, किसी भी प्रकार की आसक्ति, मोह, राग, द्वेष आदि से मुक्त हों, फल की चिंता से मुक्त हों ऐसे कर्म सात्विक कर्म कहलाते हैं। इन कर्मों को ही श्रीकृष्ण ने अकर्म, निष्काम कर्म, अनासक्त कर्म कहा है। राजसिक कर्मों का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि–

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम ॥[14]

अर्थात ऐसा कर्म जो अधिक परिश्रम से किया गया हो, कामनाओं की पूर्ति से किया गया हो, जिस कर्म में फल के प्रति आसक्ति हो, अहंकार से किया जाने वाला कर्म, फल की इच्छा से किया गया हो किसी को निमित्त मानकर किया गया हो, जिसे वेदों में काम्य कर्म कहा गया है ऐसा कर्म राजसिक कर्म कहा जाता है। यह बंधन में बांधने वाला कर्म है। तामसिक कर्मों के विषय में श्रीकृष्ण कहते हैं–

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥[15]

अर्थात जो कर्म परिणाम को सोचे बिना किए जाते हैं, तत्परता से, निरंकुश होकर किए जाते हैं, हिंसा, अहंकार, हानि, अज्ञानता के विचार से किए जाते हैं, वे कर्म तामसिक कर्म कहे जाते हैं। इन कर्मों को श्रीकृष्ण ने विकर्म कहा है, वेदों में इन कर्मों को निषिद्ध कर्म कहा है, महर्षि पतंजलि इन कर्मों को कृष्ण कर्म कहते हैं जो पाप योनियों में पंहुचाने का मार्ग हैं।

उपसंहार

उपरोक्त शोध पत्र में भगवद्गीता में उल्लेखित कर्म को सुझाया गया है जिसके पालन करने से व्यक्ति अपने समग्र स्वास्थ्य को सुरक्षित कर सकता है। श्रीकृष्ण द्वारा बताए गए शास्त्रोक्त कर्मों से व्यक्ति किसी प्रकार के बंधन में नहीं बंधता जन्म–मृत्यु के चक्कर से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। हम जो भी कर्म करते हैं उसका फल तो अवश्य ही मिलता है। हम देखते हैं है कि हम जैसे ही कोई कार्य करते हैं उसका प्रभाव हमारे शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर दिखने लगता है। यदि हम चोरी करते हैं तो हमारा हाव–भाव बदल जाता है, पसीना आने लगता है, पेट में दर्द होने लगता है, हिंसा करते हैं तो हाथ कांपने लगते हैं, भय से श्वास तेज हो जाती है जो हमारे स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। उपरोक्त गीतोक्त कर्मों को अपने जीवन में अपनाने पर हम निश्चित ही अपने स्वास्थ्य को स्वस्थ रख सकते हैं।

सन्दर्भ

1. भगवद्गीता 18/5॥
2. भगवद्गीता 2/47॥
3. श्रीमदभगवद्गीता 3/5।।
4. वही 16/24॥
5. महाभारत वन पर्व 32/9॥
6. यजुर्वेद 40/2।।
7. योगदर्शन 2/12॥
8. वही 2/13॥
9. अथर्ववेद12/3/48॥
10. श्रीमदभगवद्गीता 4/17॥
11. बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
12. तस्माद्योगाय युजस्व योगः कर्मसु कौशलम ॥गीता 2/50॥
13. कर्माशुक्लाकृष्णां योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्।। योगदर्शन 4/7॥
14. भगवद्गीता 18/23॥
15. वही 18/24॥
16. वही 18/24॥